International Journal of Information Movement Vol.5 Issue IV (August 2020)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 30-36

'नवजागरणकालीन राष्ट्रीय चेतना और भारतेन्दु का रचनात्मक साहित्य'

डा. ऋतु
डी.ए.वी. (पी. जी) कॉलेज,
करनाल, हरियाणा
Email: kaliaritu1975@gmail.com

भूमिका –

जब कोई देष या समाज लम्बे समय तक पराधीन रहता है तो उसमें जड़ता आ जाती है और धीरे–धीरे उसका क्षय शुरू हो जाता है। इसलिए उस जड़ता से मुक्ति या स्वाधीनता का सवाल उसके लिए मूल्यवान हो जाता है। पराधीन समाज या देष का पतन विभिन्न स्तरों पर होता है। चाहे वह राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक पतन हो या सामाजिक पतन। पतन का स्वरूप बहुत कुछ पराधीन करने वाली शक्ति और उसकी प्रकृति पर निर्भर करता है। भारतीय समाज की यह विडम्बना रही है कि एक ओर वह जहाँ देषी सामन्तों की पराधीनता में रही वहीं दूसरी तरु ब्रिटिष साम्राज्यवादी अधिनता में भी रही। समाज कोई जड़ और स्थिर इकाई नहीं होती है। समाज की प्रगतिषीलता के फलस्वरूप परिवर्तन के नये अंकुर फूटते हैं और बदलाव की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। बदलाव की प्रक्रिया के कारण ही सामाजिक सुधार आन्दोलनों की आवष्यकता अनुभव की गई और जीवन की जड़ता को तोड़ने का प्रयास किया गया। भारतीय इतिहास में 19वीं शताब्दी का समय बौद्धिक और सांस्कृतिक हलचलों का दौर था। इस सदी के सामाजिक जीवन में भी बदलाव की प्रक्रिया का अनुभव किया जाने लगा। अतः यह आवष्यक हो गया कि तत्कालीन औपनिवेषिक, सामंती एवं पूंजीवादी व्यवस्था के दाँव–पेंच को समझने के साथ ही भारतीय समाज में व्याप्त तमाम विसंगतियों का आंकलन करें और उसके अनुरूप उन विसंगतियों से मुक्ति पाने की, स्वाधीनता की चेतना जागृत करें। इस स्वप्न ने भारतीय के मानस पटल पर एक नयी चेतना का बीजारोपण कर दिया, जिसे बाद के समय में 'नवजागरण' की संज्ञा दी गई। आगे हम नवजागरणकालीन राष्ट्रीय चेतना के विषय में गहराई से बात करेंगे।

'जो भरा नहीं है भावों से, जिसमें बहती रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेष का प्यार नहीं।"

निष्चय ही प्रत्येक देष की जनता को अपने देष के प्रति प्रेम होता है। एक निष्चित सीमा में रहने के नाते हर मनुष्य में राष्ट्रीयता की भावना होती है। मनुष्य होने के नाते साहित्यकार में भी यह भावना होती है। विष्व के सभी देषों की साहित्यिक कृतियों में यत्र–तत्र–सर्वत्र राष्ट्रीयता की भावना देखने को मिलती है। हमारा भारत और हिंदी साहित्य भी इससे अछूता नहीं है बल्कि आधुनिक काल का सम्पूर्ण साहित्य राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत है। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीयता की भावना का सर्वाधिक प्रचार–प्रसार आधुनिक काल में हुआ। आज संसार के सभी देषों में राष्ट्र–जागरण एवं जन–जागरण के उदात्त स्वर सुनाई पड़ते हैं। यही कारण है कि विष्व साहित्य में राष्ट्रीय भावना का जितना विकसित रूप आधुनिक काल में दिखाई देता है उतना प्राचीन काल के साहित्य में नहीं। यह बात हिंदी साहित्य के सम्बन्ध में भी अक्षरषः लागू होती है।

आधुनिक हिंदी साहित्य को कई भागों में (भरतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, साठोत्तरी कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक इत्यादि) बाँटा गया है। पाष्चात्य नवजागरण के अनुकरण और भारतीय चिंतकों के चिंतन एवं सामाजिक कार्यों के फलस्वरूप भारत में जो राष्ट्र एवंज न–जागरण की लहर पैदा हुई उसे हमें भारतीय नवजागरण के नाम से जानते हैं। भारत में नवजागरण का समय राममोहन राय, और ईष्वरचन्द्र विद्यासागर के समय से प्रारम्भ होता है या यूं कहें सन् 1800 ई. के आस–पास हो रहे बदलावों को भारतीय नवजागरण के नाम से जाना जाता है। पाष्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से सबसे ज्यादा बंगाल प्रभावित हुआ और वहाँ के लोगों में सबसे पहले प्रगतिषीलता आयी। इस प्रगतिषीलता के कारण ही भारतीय चिंतकों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, ढोंग, अंधविष्वासों का पर्दाफाष किया तथा इसे देष और समाज के लिए घातक बताया। साथ ही सामाजिक क्षेत्र में बाल–विवाह, विधवा–विवाह, सतीप्रथा जैसी कुरीतियों के उन्मूलन के लिए आजीवन संघर्ष किया तथा स्त्री षिक्षा पर विषेष जोर दिया। उपरोक्त कार्यों के संदर्भ में राममोहन राय और ईष्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम विषेष रूप से लिया जाता है। बंगाल के बाद धीरे–धीरे सम्पूर्ण भारत में नवजागरण की चेतना फैल गयी।

उत्तर भारत में नवजागरण की चेतना देरी से आयी और यह नवजागरण का प्रमुख केन्द्र भी बन गया। सन् 1957 की क्रांति उत्तर भारत के युक्ताप्रान्त (उत्तर प्रदेष के मेरठ जनपद) में घटित हुई। डॉ. रामविलास शर्मा का मानना है कि हिंदी प्रदेषों में नवजागरण की शुरूआत ही सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम से शुरू होता है। इस संग्राम में दलित किसान–मजदूरों ने हथियारबन्द लड़ाई लड़ी थी। वे कहते हैं कि "फौज के भीतर वाले किसानों के साथ, गाँव के गैर फौजी किसान थे और दोनों ने मिलकर जो हथियारबन्द लड़ाई चलाई, वैसी लड़ाई न तो सन् 1857 से पहले कभी चलाई गई थी न उसके बाद कभी चलाई गयी। लड़ने वाले किसानों में केवल उच्चवर्ग के हिन्दू नहीं थे। उनके साथ निम्न वर्ण के सैकड़ों आदमी थे। हिन्दुओं के साथ हजारों मुसलमान थे, धर्म और वर्ण की सीमायें तोड़कर।' एक बात यहाँ स्पष्ट करना जरूरी है कि भारतीय नवजागरण अन्तर्गत ही हिंदी नवजागरण आता है परन्तु दोनों की प्रमुख विषेषताओं में अन्तर है। भारतीय नवजागरण में समाज सुधार की बात प्रमुख

है और हिंदी नवजागरण में साम्राज्यवाद सामंतवाद विराध पर स्वर मुखर है। इस बात को लक्ष्य करते हुए ओमप्रकाष वाल्मीकि जी ने दूसरे शब्दों में लिखा है–"19वीं सदी के उतरार्द्ध में हिंदी साहित्य का केन्द्र बनारस और इलहाबाद थे। इन केन्द्रों से जुड़े लेखक जिन आन्दोलनों से जुड़े थे, वे थे, नागरीलिपि, हिंदी भाषा, गोरक्षा जबकि बंगाल, महाराष्ट्र नवजागरण में यूरोपीय धर्म सभ्यता और संस्कृति से भारतीय परम्परा की सीधे टकराहट थी।"[1]

उत्तर भारत (हिंदी प्रदेष) में नवजागरण (हिंदी नवजागरण) का केन्द्र इलाहाबाद और बनारस था। बाबू भारतेन्दु हरिष्चन्द्र बनारस के थे। हिंदी साहित्य में आधुनिक काल का श्रीगणेष भारतेन्दु हरिष्चन्द्र से ही माना जाता है। भारतेन्दु हरिषचन्द्र परम्परागत ढर्रे पर साहित्य सृजन न कर उसे राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं से जोड़ा। वह व्यक्ति के अलावा एक संस्था थे। उनका समय समाज में हो रहे अनेक परिवर्तनों का समय था। इसलिए नई चेतना के कारण भारतेन्दुयुगीन साहित्य रीतिकालीन चेतना से मुक्त हुआ। भारत गुलाम था और अंग्रेजों से मिलकर भारतीय नरेष आम जनता का शोषण कर रहे थे। इस शोषण के कारण ही 1857 का विद्रोह हुआ जिसे प्रथम स्वाधीनता संग्राम के नाम से जाना जाता है। भारतेन्दु हरिष्चन्द्र ने उस समय की शोषण व्यवस्था के चरित्र को उजागर किया। उन्होंने किसानों, मजदूरों, देष–दषा को साहित्य लेखन का केन्द्र बनाया। दूसरी तरफ वे नवीन युग की वैज्ञानिक चेतना के समर्थक थे। भारतेन्दु ने अपने समय की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक हलचलों का बड़ा सूक्ष्म निरीक्षण किया। उन्होंने न सिर्फ स्वयं साहित्य सृजन का काम किया बल्कि एक मण्डल भी तैयार किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है–"हरिष्चन्द्र के जीवन काल में ही लेखकों और कवियों का एक खासा मण्डल चारों ओर तैयार हो गया। उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चींगारी, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, बाबू तोताराम, ठाकुर जगमोहन सिंह, लाला श्रीनिवास दास, पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित केशवदास भट्ट, पं. अम्बिका दत्त व्यास, पंडित राधाचरण गोस्वामी इत्यादि कई प्रौढ़ और प्रतिभाषाली लेखकों ने हिंदी साहित्य के इस नूतन विकास में योग दिया था।"[2] इन सारे लेखकों ने अपने समय की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जड़ता पर कुठारा प्रहार किया। चूँकि भारत गुलाम था इसलिए पराधीनता की बेड़ियों से मुक्ति की आकांक्षा भी नवजागरणकालीन साहित्य में मिलता है। इस संदर्भ नवजागरण के महत्वपूर्ण अध्येता कर्मेन्दु षिषिर जी ने लिखा है–"हिंदी नवजागरण हमारे निकटतम अतीत का आइना है। पराधीनता के समय हमारी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अवस्था कैसी थी? उससे किस तरह के बदलाव आते गये? हम कितनी तरह की पराधीनता भुगत रहे थे और उनसे हमारी मुक्ति की क्या कोषिषें थीं? किन–किन स्तरों पर हमारा शोषण हो रहा था और हम उससे किस तरह जूझ रहे थे? हमारे भीतर जागरुकता कैसे पैदा हुई, विकसित हुई, हम किस तरह संगठित हुए और अंततः हमने किस तरह विभिन्न मोर्चो पर संघर्ष किया? हमारे संघर्ष के स्वरूप में कितना वैविध्य था, कितनी भिन्नता थी? अलग–अलग मोर्चो पर किन लोगों ने नेतृत्व किया और किन तरीकों से लड़े, उन सबका निजी और सामूहिक योगदान क्या था–ये तमाम साक्ष्य ही हिंदी नवजागरण का साहित्य है।"[3]

भारतेन्दु हरिष्चन्द हिंदी नवजागरण के अग्रदूत हैं। उन्होंने एक साहित्यिक मंडल की भी स्थापना की थी जिसे भारतेन्दु मण्डल के नाम से जाना जाता है। इस मण्डल के लेखक अनेक संगठनों से जुड़े थे। इस संदर्भ में कर्मेन्दु षिषिर ने लिखा है–"पहली बात तो यह है कि हिंदी नवजागरण में ऐसा एक भी लेखक नहीं है जो कोई न कोई संगठन नहीं बनाया। बिना संगठन का कोई लेखक न था। भारतेन्दु ने संगठनात्मक रूप से अनेक कार्य किये थे। स्त्रियों के लिए स्कूल खोलने, होमियोपैथी की दुकान खोलने से और कितना कुछ सबके नाम याद नहीं।... राधाचरण गोस्वामी का अलग संगठन था। वह तो कांग्रेस के बाजाप्ता कार्यकर्त्ता थे। उन्होंने तो अपनी सक्रियता से आन्दोलन खड़ा कर दिया था। जब मालवीय जी ने सन् 1885 में बंबई से हयूम का कांग्रेस प्रस्ताव लेकर पहली बार इलाहाबाद में जो बैठक की थी, उसमें तीन तो हिंदी के लेखक थे। एक बालकृष्ण भट्ट थे, एक उनके रिष्ते में भाई और तीसरे राधामोहन गोकुल थे। प्रतापनारायण मिश्र का संगठन कानपुर में था तो प्रेमघन जी का मिर्जापुर में तो सबके संगठन होते थे। प्रेमघन के संगठन के ही एक सदस्य थे रामचन्द्र शुक्ल। मुरादाबाद का अलग मण्डल था। पटना के गायघाट में राधालाल गोस्वामी का अलग"[4] इस तरह हम देखते हैं कि नवजागरण काल के सारे लेखक किसी न किसी संगठन से जुड़कर देष और समाज को जगाने का काम कर रहे थे।

भारतेन्दु युग के लेखक देष की दुर्दषा पर चिंतन करते हुए समाज में साहित्य के माध्यम से नवजागरण का कार्य कर रहे थे। इसी कारण साहित्य जन जीवन के अधिक निकट आने लगा था तथा कवियों/रचनाकारों की दृष्टि अधिक व्यापक और यथार्थपरक होने लगी थी। इस यथार्थपरकता के कारण ही राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित हुआ। भारतेन्दु युग के महत्त्वपूर्ण एक हस्ताक्षर बालकृष्ण भट्ट थे। ये प्रमुख रूप से निबंधकार थे। भट्ट जी अपने समय की वास्तविक स्थिति का यथार्थ चित्रण करते हुए 'हिन्दुस्तान में दरिद्रता का वास क्यों दृढ़ जोता जाता है? शीर्षक निबंध में लिखते हैं–"दस वर्ष पहले जो था वो आज नहीं है। दस वर्ष जिस घर में आनन्द कोलाहल मचा रहता था आज वह घर गुपचुप दुःखित दषा से अपना दिन काट रहा है। फिर एक–दो घर की ऐसी दषा हो सो नहीं देष का देष दरिद्रता के कारण बेकली और बेचैनी से वीभत्स रस का थियेटर बनता जाता है। देष में प्रतिवर्ष रेल और नहरें बढ़ती जाती हैं, बड़ी–बड़ी नदियों में व्यापारियों के स्टीमर आया जाया करते हैं।... जमींदार और इलाकेदारों के पास जमीन और इलाकों की कमती नहीं पर कर्ज उनपर भी दिन–प्रतिदिन लदता जाता है। मध्यम श्रेणी वालों के घर में जो कुछ आता है वह टांके टूक उतना ही जितने में कुटुम्ब पोषण मात्र हो जाये। तब नीची श्रेणी वालों का क्या कहना दिनभर मेहनत करते–करते दांतों पसीने आते हैं पर सांझ को पेट का एक कोना खाली ही रखकर सोते हैं। समय को देखिए तो जो समय आज है कल इससे बदतर ही नजर आयेगा, कानून का छिलावट और ऐंच–पेंच से लोगों में सयानापन, बेईमानी और अविष्वास बढ़ता ही जाता है। यह बात केवल पष्चिमोत्तर ही में हो सो नहीं पंजाब, बंगाल, बम्बई,

मंदराज सर्वत्र एक सा ऐसे ही विभत्स रस छाया हुआ है।"[5] बालकृष्ण भट्ट के समकालीन ही भारतेन्दु मण्डल एक महत्वपूर्ण लेखक चिंतक प्रतापनारायण मिश्र थे। प्रतापनारायण मिश्र ने व्यंग्य परक सामाजिक निबंध, नाटक एवं कविताएँ भी लिखीं। वे बहुत कुछ बातों में अपना सानी नहीं रखते। वे एक चैतन्य या सजग रचनाकार थे। वे देष की दुर्दषा से चिंतित थे। वह देष की दुर्दषा और शोषण से मुक्ति के लिए भारत की एकता पर बल देते थे। वह निज भाषा की उन्नति को महत्व देते हुए कहते हैं–

"चहहु जो साँचहु निज कल्यान, तो मिल सब भारत संतान।
जपो निरन्तर एक जबान, हिंदी हिन्दू हिन्दुस्तान।।
जिन्हें नहीं निजता को ज्ञान, वे जन जीवित मृतक समान।
याते गहु यह मंत्र महान, हिंदी हिन्दू हिन्दुस्तान।।"[6]

प्रतापनारायण मिश्र अपने समय की बदलती हुई परिस्थितियों का बड़ा ही सुक्ष्म अवलोकन किया। उन्हें राजभक्ति और देषभक्ति की खिचड़ी पसन्द नहीं थी। इन्होंने देषहित के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। उनकी रचनाएँ देष और समाज में फैली हुई विसंगतियों पर करारा व्यंग्य करती है।। एक उदाहरण द्रष्टव्य है जो तत्कालीन स्थितियों पर व्यंग्य करती हैं– "खुषामद से खाली कोई नहीं है पर खुषामद करने की तमीज हर एक को नहीं होती। इतने बड़े हिन्दुस्तान भर में केवल चार छः आदमी खुषामद के तत्ववेत्त हैं। दूसरों की क्या मजाल है कि खुषामदी की पदवी ग्रहण कर सकें। हम अपने पाठकों को सलाह देते हैं कि अपनी उन्नति चाहते हो तो नित्य थोड़ा–थोड़ा खुषामद का अभ्यास करते रहें। देषोन्नति फेषोन्नति के पागलपन में न पड़े नहीं तो हमारी तरह भकुआ बने रहेंगे।"[7]

बदरीनारायण चाह्हारी प्रेमघन भारतेन्दु मण्डल के एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर थे। इन्होंने मुख्यतः निबंध, नाटक और कविताओं की रचना की। आनन्द कादम्बिनी नाम की पत्रिका का प्रकाषन प्रेमघन ने किया। प्रेमघन ने अपने निबन्धों के माध्यम से हिन्दुओं में प्राचीन भारतीय गौरव के साथ–साथ हिन्दू गौरव का स्मरण कराते हुए उनमें राष्ट्रीय चेतना का भाव जगाते हुए कहते हैं कि–"हम लोग वीर वंष हैं, भारत वीर देष है, यद्यपि इसमें किसी को सन्देह हो तो है के स्थान पर था, कह देने से कदाचित फिर जिह्वा संचालन का अवसर उसे न रहेगा। क्योंकि महाभारत भारत में ही हुा था और सौ वर्षो तक रूधिर की नदियां यहीं प्रवाहित होती रहीं। उस समय जबकि संसार में लोग केवल ढेले पत्थर और लाटी लोटे को ही अस्त्र–षस्त्र का अनुमान करते थे, हमारे यहाँ धनुर्वेद के आचार्य विद्यमान थे।"[8] भारतेन्दु के अन्य महत्वपूर्ण रचनाकारों में ठाकुर जगमोहन सिंह, कार्तिकप्रसाद खत्री, अम्बिकादत्त व्यास आदि थे। इस सभी रचनाकारों के निबन्धों, नाटकों एवं कविताओं में राष्ट्रीय चेतना एवं देषभक्ति को रेखांकित किया जा सकता है। इन रचनाकारों ने तत्कालीन सामाजिक समस्याओं की तरु भी जनमानस का ध्यान आकर्षित कराकर जनोद्वेलन की भावना पैदा की। इस परिप्रेक्ष्य में पं. अंबिकादत्त व्यास की एक कविता उल्लेखनीय है जिसमें वे भारतीय वस्तुओं को छोड़कर विदेषी वस्तुओं के प्रयोग पर क्षोभ प्रकट करते हुए पाष्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति में रंगे हुए भारतीय नवयुवकों से कहा–

"पाहिरि कोट पतलून बूट अरु हैट धारि सिर।
भालू चरवी चरवील वेंडर को लगाय फिर।।
निज भाइन के रचे बसन भूषन नहि भावत।
मैनचेस्टर अरु लिवरपूल से लादि मँगावत।।"

जहाँ तक भारतेन्दु हरिष्चन्द्र के रचनात्मक साहित्य में राष्ट्रीयता का प्रष्न है? वह प्रष्न सिर्फ राष्ट्रीयता का ही नहीं बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक शोषण के कुचक्र का भी पर्दापाष करती हैं। एक चीज और गौरतलब है कि भारतेन्दु का रचनात्मक साहित्य राजभक्ति और देषभक्ति के द्वन्द्व में उलझा हुआ है। वह एक तरु राजराजेष्वरी विक्टोरिया रानी और अंग्रेजी शासन की प्रषंसा करते हैं तो दूसरी तरु भारत दुर्दषा, विषस्य विषमौषधम, अंधेर नगरी जैसे नाटक की रचना सामाजिक व्यवस्था और देषी रववाड़ों के विष्वासघाती रणनीति को भी उजागर करते हैं। सन् 1857 के संग्राम के बाद अंग्रेजों का विरोध करना बड़ा मुष्किल था। इसलिए उन्होंने अंग्रेजीराज की प्रषंसा का सहारा लिया। उन्हें महारानी विक्टोरिया से बहुत आषा थी क्योंकि सम्पूर्ण शक्ति की केन्द्र वही थीं। इसलिए भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो? यह उनकी मूल चिन्ता थी और साहित्य की विषयवस्तु भी। भारतेन्दु की अधिकतर काव्य रचनाऐं भक्तिपरक हैं। अगर कोई भारतेन्दु कविताओं में राष्ट्रभक्ति का स्वर ढूढ़ने का प्रयास करेगा तो उसे कुछ कविताओं को छोड़कर निःसंदेह निराषा ही हाथ लगेगी। इस संदर्भ में भारतेन्दु ग्रन्थावली के सम्पादक प्रो. ओमप्रकाष सिंह ने लिखा है–"राजभक्ति की भावना भारतेन्दु में कूट–कूटकर भरी हुई है। जहाँ कहीं भी मौका मिला है उसकी इजहार में वे नहीं चूके हैं। यही कारण है कि भारतेन्दु की कविताओं में ऐसी कविताओं की संख्या अच्छी–खासी है। देषभक्ति से सम्बन्धित भारतेन्दु की कविताएँ उनके नाटकों में आई हैं और वे वहाँ सुरक्षित हैं। उनकी स्वतंत्र कविताओं में देषभक्ति के स्वर का स्थान करने वाले अनुसंधित्सु को निराषा हाथ लगेगी।"[9]

भारतेन्दु की अधिकतर कविताएँ भक्तिपरक हैं। इन्हीं कविताओं में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना का स्वर मिलता है। इस युग (भारतेन्दु युग) में जीवन, समाज और देष की समस्याएं भी कविता की विषय वस्तु बनीं। भारतेन्दु के काव्य में चेतना के दो रूप मिलते हैं–पहला राष्ट्रीय चेतना का स्वर जो अंग्रेजीराज और खास तौर पर उसके द्वारा किये जा रहे आर्थिक शोषण का विरोध करता है। दूसरा सामाजिक चेतना का स्वर, जो अपने ही समाज में फैले हुए तमाम बुराइयों, ढ़ोग अंधविष्वास एवं

रूढ़ियों का विरोध करता है, जिसे हम समस्या पूर्ति का साहित्य भी कहते हैं। भारतेन्दु जी लोगों में राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने के लिए प्राचीन कथ्यों का भी सहारा लेते थे। वे लिखते हैं–

"अपने को तू समझ जरा क्या भीतर क्या भूला है।
तेरा असिल रूप क्या है तू जिसके उपर फूला है।।
हड्डी चमड़ी लहूँ मांस चरबी से देह बनायी है।
भीतर देखों तो धिन आवै उपर से चिकनाई है।।"[10]

इस कविता में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को युद्ध भूमि में दिये गये ज्ञान की परोक्ष छाया लक्षित की जा सकती है। जिसके माध्यम से भारतेन्दु हरिष्चन्द्र देष के नवयुवकों को यह सन्देष देते हैं कि तुम्हारें अन्दर ऊर्जा का अजस्र स्रोत है। तुम स्वयं को पहचानों और जो ये मांसल शरीष है जिसकी चिकनाई, गोराई पर तुम गर्व करते हो, वह अन्दर से घिनौनी है। इसलिए सर्वस्व त्याग कर स्वयं को पहचानों और अपने असली रूप में आओ–

"अरे बीर इकबेर उठहु सब फिर कित सोये।
लेहु करन करवालि काढ़ि रन रंग समोये।
चलहु बीर उठि तुरंत सबै जय ध्वजहि उड़ओं।
लेहु म्यान सों खंग खींची रंग जमाओ।।"[11]

भारतेन्दु जी की सबसे बड़ी विषेषता आत्मचेतना थी। वह एक तरु प्रिन्स ऑफ वेल्स, ड्यूक एडिनवरा और रानी विक्टोरिया के आगमन पर प्रषस्ति/प्रषंसा पत्र लिखते हैं तो दूसरी तरु राजा लोग यहाँ क्यों आते हैं। यहाँ तो उनके प्रकोप से (भारत में) अँधियारा छाया हुआ है। इस संदर्भ में वे लिखते हैं–

"सुनत सेज तजि भारत माई। उठी तुरन्तहि जिय अकुलाई।।
निविड़ केस दोउ कर निरुआरी। पति बदन की क्रांति पसारी।।
भरे नेत्र अंसुवन जल धारा। लै उसास यह बचन उचारा।।
क्यों आवत इत नृपति कुमारा। भारत में छायो अंधियारा।।[12]

दूसरी तरु भारतेन्दु जी दुःख प्रकट करते हुए कहते हैं कि भारत की भूमि हर प्रकार से दुःखी है। जिस भारत में सिर्फ सिंहों की नाद सुनाई देती हैं अब यहाँ ससक, सियार, स्वान, खर आदि दिखाई देते हैं। यहाँ हजारों कोष में भी एक बीर दिखाई नहीं देता है–

हाय!
सोई भारत भूमि भई सब भाँति दुःखारी।
रहयौ न एकहु बीर सहस्रन कोस मंसारी।
होत सिंह को नाद जौन भारत बन नाहीं।
तहं अब ससक सियार स्वान खर आदि लखाहीं।"[13]

भारतेन्दु की अधिकतर कविताएँ राजभक्ति की प्रषंसा में हैं। यह पहले कहा जा चुका है। भारतेन्दु जिस समय साहित्य लेखन का कार्य कर रहे थे, वह दौर गुलामी का था। अंग्रेजों ने भारत में नित नये शोषण के तरीके को इजाद किया। यहाँ तक कि उनके शोषण के तरीकों को उजागर करने वाली कहानियों, नाटकों एवं पत्र–पत्रिकाओं पर पाबंदी भी ब्रिटिष सरकार द्वारा लगा दिया गया। कहने का अर्थ यह है कि सन् 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों का विरोध करना बड़ा मुष्किल हो गया था। इसलिए बाबू भारतेन्दु हरिष्चन्द्र जी देषभक्ति के साथ–साथ राजभक्ति की भी कविताएँ लिखा करते थे। इसके बावजूद भी उन्हें कई बार अपने लेखन कार्यो के कारण ब्रिटिष सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा। उन्होंने प्रिंस आफ वेल्स के आगमन पर लिखा कि "जब आप से कुछ भी कहने की इच्छा करते हैं तो चिका में कैसे विविध भाव उत्पन्न होते हैं। ..... कभी हिन्दुओं की दीन दषा पर करुणा उत्पन्न होती है, कभी स्नेह कहता है कि हां यही अवसर है खूब जी खोलकर जो कुछ ह्रदय में बहुत काल से भाव और उद्गार संचित हैं उनको प्रकाष करो। पर साथ ही राजभक्ति और आपका प्रताप कहता है कि खबरदार हद से आगे न बढ़ना जो कुछ बिनती करना बड़ी नम्रता और प्रणम के साथ।"14

इस तरह भारतेन्दु जी अपने समय की स्थिति बखुबी समझते थे। वह प्रषंसा के माध्यम से ही आमजन में देषभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना पैदा करते थे। एक तरु वे प्रिंस और वेल्स के आगमन पर लिखते हैं–

आओ आओ हे युवराज।
धन धन भाग हमारे पूरे सब मन काज।।
क्हं हम कहं तुम कहं यह धन दिन कहं यह सुभ संयोग।।
कहं हतभाग भूमि भारत की कहं तुम से नृप लोग।।
बहुत दिनन की सूखी डाढ़ी, दीना भारत भूमि।
लहि है अमृत वृष्टि सो आनन्द तुव पर पंकज चूमि।"[15]

दूसरी तरु वह (भारतेन्दु) रानी विक्टोरिया की प्रषंसा में देषवासियों की स्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं–

"दीन भये बलहीन भये धन छीन भये सब बुद्धि हिरानी।
ऐसी न चाहिए आपके राज प्रजागन ज्यों मछरी बिनु पानी।

या रुज की तुम ही अहो बैद कहै तेहिं ते 'हरिचन्द्र' बखानी।
टिक्कस देहु छुड़ाई कहैं सब जीवौं सद विक्टोरिया रानी।।"[16]

धीरे–धीरे भारतेन्दु हरिष्चन्द्र का प्रिंस और वेल्स और विक्टोरिया रानी से मोह भंग हो जाता है। उसके बाद वह मुख रूप धारण करते हैं और अंग्रेजी शासन का पुरजोर विरोध करते हैं। वे कहते हैं कि अंग्रेज भीतर ही भीतर हमारे देष को लूट रहे हैं–

'भीतर भीतर सब रस चूसै। हंसि हंसि कै तन मन धन मूसै।।
जाहिर बातन में अति तेज। क्यों सखि सज्जन नहीं अंग्रेज।।'
नई नई नित तान सुनावै। अपने जाल में जगत फंसावै।
नित नित हमैं करे बल सून। क्यों सखि सज्जन नहीं कानून।।"[17]

भारतेन्दु हरिष्चन्द्र जी ने देष दुर्दषा का चित्रण कर देषभक्ति/राष्ट्रभक्ति चेतना जगाने का प्रयास किया। उन्होंने राष्ट्रीय एकता के उद्देष्य से न सिर्फ राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक चेतना से ओतप्रोत कविताएँ लिखी बल्कि निज भाषा के प्रचार–प्रसार एवं प्रयोग पर बल दिया। उनका स्पष्ट मानना था कि निजभाषा की उन्नति के बिना देष और समाज की उन्नति नहीं हो सकती और नहीं विचार–विनियम। भारतेन्दु जी निजभाषा की महत्ता पर बल देते हुए जनता से आह्वान किया–

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।
अंग्रेजी पढ़िके जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन।।
करहु विलम्ब न भ्रात अव उठहु मिटावहु सूल।
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सब को मूल।।[18]

भारतेन्दु हरिष्चन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माता थे। उनका व्यक्तित्व विराट था और विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न थे। वे एक व्यक्ति न होकर अपने आप में एक संस्था के समान थे। बिना कोई परवाह किये उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति जनसेवा एवं साहित्य सेवा में लगा दिया। वे कहते थे कि इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है। इसलिए वह बिना कुछ परवाह किये उस धन को समाज सेवा में लगाया और निर्भिकतापूर्वक अंग्रेजी साम्राज्य की शोषणकारी व्यवस्था की आलोचना की। आलोचना का निमर्म रूप नाटकों में दिखता है। उन्हें अपने देष और समाज की भी चिंता होती है कि यहाँ का सारा धन विदेष चला जाता है। 'अंधेर नगरी' (1884 ई.) नाटक में ब्रिटिष अफसरों के साथ–साथ भारतीय रजवाड़ों, महाजनों एवं शासन व्यवस्था की पोलपट्टी को उजागर करते हुए वे कहते हैं–

पाचकवाला :
"हिन्दू चूरन इसका नाम। विलायत पूरन इसका काम।।
चूरन जब से हिन्द में आया। इसका धनबल सभी घटाया।।
चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।।
चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिन्द हजम कर जाता।।
चूरन पुलिस वाले खाते हैं। सब कानून हजम कर जाते हैं।"[19]

भारतेन्दु के समय में भारत गुलाम था और वह कई छोटी–छोटी देषी रियासतों में बँटा हुआ था। देषी रजवाड़े आपस में शत्रुता की भावना रखते थे जिसका फायदा अंग्रेजों को हुआ। आपसी बैर के कारण ही भारत गुलाम हुआ क्योंकि अंग्रेजों से लड़ाई में राजाओं ने अपनी शत्रुता का बदला लेने के लिए अंग्रेजों की मदद करते रहे। जिससे अंग्रेजों ने धीरे–धीरे सभी राजाओं को उनकी फूट और बैर के कारण छलपूर्वक जीत लिया। भारतेन्दु ने इस बात को लक्ष्य करते हुए 'अंधेर नगरी' में कुजड़िन के माध्यम से कहते हैं–"जैसे काजी वैसे पाजी रैयत राजी टके सेर भाजी। ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और वैर।"[20] इसी वैर और फूट के कारण भारत गुलाम हुआ जिसका आर्थिक शोषण बड़े स्तर पर हुआ। दूसरी तरु 'भारत दुर्दषा' (1876) नाटक का प्रारम्भ ही रूदन होता है–

"रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत आई।
हा हा भारत दुर्दषा न देखी जाई।।
अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेष चलि जात इहै अतिख्वारी।।"[21]

भारतेन्दु जी ने अपने थोड़े से समय में ही देष की उन्नति का स्वप्न देखे थे। वे अपनी पूरी शक्ति और सम्पूर्ण साधनों से देष के जन जन को जगाने का कार्य किया था। वह चाहते थे किसी भी तरीके से हम लोग गुलामी की जंजीरों से मुक्त हों। भारतेन्दु जी 'भारत दुर्दषा' नाटक में 'आलस्य' नामक पात्र के माध्यम से भारतीय जनजीवन में व्याप्त अकर्मण्यता पर तंज कसते हुए कहते हैं–

"सिजदे से गर बिहिष्त मिले दूर कीजिए।
दोजख ही सही सिर का झुकाना नहीं अच्छा।।
मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलों को क्या।

ऐ मीरे फर्ष रंज उठाना नहीं अच्छा।।"22

भारतेन्दु हरिष्चन्द्र युग प्रवर्तक थे। भारतेन्दु युग में नाटकों एवं निबंधों की सर्वाधिक रचना हुई। इसी को लक्ष्य करके आचार्य शुक्ल ने लिखा कि "सबसे विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य साहित्य की परम्परा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।' दूसरी तरु उन्होंने निबंध को गद्य की कसौटी माना। भारतेन्दु जी ने अनेक निबंध लिखे जिसमें 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' निबंध की चर्चा उपयुक्त जान पड़ता है। भारतेन्दु का अधिकाधिक रचनात्मक साहित्य सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण है। भारतेन्दु जी भारतवर्ष की उन्नति के सम्बन्ध में लिखते हुए अपने देषवासियों से आह्वान करते हैं कि–"हमारे हिन्दुस्तानी लोग तो रेल की गाड़ी है। यदि फस्ट क्लास, सेकेंड क्लास आदि गाड़ी बहुत अच्छी अच्छी और बड़े–बड़े महसूल की इस ट्रेन में लगी हैं पर बिना इंजिन के ये सब नहीं चल सकती, वैसे ही हिन्दुस्तानी लोगों को कोई चलाने वाला हो तो ये क्या नहीं कर सकते। इनसे इतना कह दीजिए 'का चुप साधि रहा बलबाना' फिर देखिए हनुमान जी को अपना बल कैसा याद आ जाता है। .... मनुष्य दिन–दिन यहाँ बढ़ते जाते हैं और रुपया दिन दिन कमती होता जाता है तो अब बिना ऐसा उपाय किये काम नहीं चलेगा कि रुपया भी बढ़े और वह रुपया बिना बुद्धि बढ़े न बढ़ेगा। भाइयों राजा महाराजाओं का मुंह मत देखो, मत यह आषा रखो कि पंडितजी कथा में कोई ऐसा उपाय भी बतालावेंगे कि देष का रुपया और बुद्धि बढ़े। तुम आप ही कमर कसो, आलस छोड़ों।... देखो, जैसे हजार धारा होकर गंगा समुद्र में मिली है वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इग्लैण्ड, जर्मनी, अमेरिका को जाती है। दीयासलाई जैसी तुच्छ वस्तु भी वहीं से आती है। जरा अपने ही को देखों तुम जिस मारकनी की धोती पहने हो वह अमेरिका की बनी है।... भाइयों, अब तो नींद से चौकों, अपने देष की सब प्रकार की उन्नति करो। जिसमें तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताब पढ़ो, वैसे ही खेलो, वैसी ही बातचीत करो। परदेषी वस्तु और परदेषी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देष में अपनी भाषा में उन्नति करो।"[23]

इस प्रकार हम देखते हैं भारतेन्दु ने धनार्पण के साथ–साथ कविता, नाटक, निबंधों आदि के माध्यम से देषवासियों में राष्ट्रीय चेतना का भाव जगाने गुरुतर प्रयास किया। अन्नतः डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में–"भारतेन्दु ने जिस संस्कृति की नींव डाली, वह राष्ट्रीय थी। उसकी मूल भावना अंग्रेजी राज की लूट से देष की रक्षा करके उसकी उन्नति करना है। उन्होंने रईसों, जमींदारों, राजाओं, पंड़ितों का मुँह न देखकर जनता को अपना भरोसा करना सिखाया। उन्होंने पढ़े–लिखे लोगों से कहा कि जनता के बिना तुम अपाहिज हो। उन्होंने षिक्षित वर्ग को साधारण जनता से एकता कायम करना सिखाया। हिन्दुओं और मुसलमानों से परस्पर भेद–भाव भूलकर देषोद्वार के लिए उन्होंने एक होने को कहा। अंग्रेजों ने जिस न्याय, पुलिस, कचहरी, फूट और आतंक की व्यवस्था की थी, भारतेन्दु ने उसके विपरीत जनता के हित–अनहित को न्याय–अन्याय की कसौटी बनाया और अंग्रेजों की कूटनीति और आतंक दोनों का विरोध किया। इस तरह उन्होंने भारतवासियों के राष्ट्रीय आत्म–सम्मान को जागृत किया और इस काम में उन्होंने पुरातत्त्व, इतिहास और प्राचीन संस्कृति का भी इस्तेमाल किया।"[24]

सन्दर्भ

1. बसुधा, जनवरी–मार्च 2008, पृष्ठ 169
2. हिंदी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोक भारती प्रकाषन इलाहाबाद, पृष्ठ सं. 317
3. हिंदी नवजागरण और जातीय गद्य परम्परा–कर्मेन्दु षिषिर, आधार प्रकाषन, प्रा. लि. पंचकूला, हरियाणा, पृष्ठ 10
4. वही, पृष्ठ 49
5. बालकृष्ण भट्ट रचनावली – सं. समीर कुमार पाठक, अनामिका, पब्लिषर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दरियांगज नई दिल्ली, पृष्ठ 143
6. प्रताप नारायण–ग्रन्थावली, सं. विजयषंकर मल्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काषी, पृ.ठ 533
7. वही, पृष्ठ 160
8. प्रेमघन सर्वस्व–सं. प्रभाकरेष्वर प्रसाद उपाध्याय– पृष्ठ 225
9. भारतेन्दु हरिष्चन्द्र ग्रन्थावली, भाग–4, सं. ओमप्रकाष सिंह, प्रकाषन संस्थान नई दिल्ली, भूमिका (इस खंड में)
10. वही, भाग–4, पृष्ठ 264
11. वही, भाग–4, पृष्ठ 325–26
12. वही, भाग–4, पृष्ठ 287
13. वही, भाग–4, पृष्ठ 325
14. वही, भाग–4, पृष्ठ 292
15. वही, भाग–4, पृष्ठ 293
16. वही, भाग–4, पृष्ठ 441
17. वही, भाग–4, पृष्ठ 374
18. वही, भाग–4, पृष्ठ 381, 82, 83
19. अंधेर नगरी, सं. डॉ. परमान्द श्रीवास्तव, लोकभारती प्रकाषन इलाहाबाद, पृष्ठ 46–47
20. वही, पृष्ठ 45
21. भारत दुर्दषा, सं. विनय कुमार तिवारी–सुमित प्रकाषन इलाहाबाद, पृष्ठ 86–87

22. वही, पृष्ठ 96
23. भारतेन्दु हरिष्चन्द्र ग्रन्थावली, भाग–6, सं. ओमप्रकाष सिंह, पृष्ठ 66, 68, 71
24. भारतेन्दु हरिष्चन्द्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ– रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाषन, इलाहाबाद, पृष्ठ 93